Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 12, Issue 2 | November 2024 - April 2025 | pp. 80-85

वैदिक साहित्य में अनुस्यूत पर्यावरणीय दृष्टि

डॉ. भावना पारीक

सह आचार्य, इतिहास
बी.एन.डी. राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

सम्पूर्ण सृष्टि को सभी ओर से आवृत करने तथा प्रभावित करने वाले घटक सम्मिलित रूप से पर्यावरण कहलाते हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और आकाश—यही पांच महाभूत किसी न किसी रूप में जीवन का निर्माण करते हैं, उसे पोषण देते हैं। भारतीय संस्कृति मानती है कि मानव देह इन्हीं पंच तत्वों का संयोजन है। इन पंचतत्वों के साथ वृक्ष, वनस्पति, पशु, मानव आदि का सम्मिलित रूप ही पर्यावरण है। प्रकृति में इन सबकी मात्रा और रचना कुछ इस प्रकार व्यवस्थित है कि पृथ्वी पर एक संतुलित जीवन चलता रहे और पारिस्थितिकी तंत्र समुचित कार्य करता रहे। जिसे जितनी आवश्यकता है वह उसे प्राप्त होता रहता है और प्रकृति स्वयं पुनरुज्जीवन की प्रक्रिया हेतु संरक्षित करने की प्रक्रिया में रत रहती है। यही पर्यावरण का संतुलन चक्र है जो जीवन चक्र को नियंत्रित करता है। "पर्यावरण संरक्षित तो जीवन सुरक्षित" मात्र एक उक्ति नहीं अपितु एक अनिवार्य और अकाट्य सत्य है। इस संतुलन में गतिरोध आते ही जीवन संकटापन्न हो जाता है। वर्तमान में पर्यावरण तीव्रता से विनिष्ट होता जा रहा है। सम्पूर्ण विश्व इसके सुधार के लिए प्रयत्न करने में लगा है किन्तु कोई सार्थक परिणाम नहीं दिखाई दे रहे हैं। प्रस्तुत पत्र में वैदिक साहित्य में निहित पर्यावरण सम्बन्धी विचारों पर विमर्श किया गया है जो इस समस्या का समाधान करने में सक्षम हैं।

संकेताक्षर—*पर्यावरण, पारिस्थितिकी, साहचर्य, प्रदूषण, देवत्व, संसाधन*

प्रस्तावना

प्राचीनकाल से ही भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को विशेष महत्व प्राप्त रहा है। वैदिक साहित्य में जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश आदि पंचमहाभूतों को पूजनीय माना गया है, जिससे इनके संरक्षण की चेतना स्वतः मानव जीवन का अंग बन गई। ऋषियों-मनीषियों ने प्रकृति के साथ समरसता एवं तादात्म्य का संदेश देते हुए मानव को इसके सहचर के रूप में देखा, स्वामी के रूप में नहीं। आज जब औद्योगीकरण, नगरीकरण, वन-क्षय, जलवायु परिवर्तन, तापमान वृद्धि, वायु व जल प्रदूषण आदि से पर्यावरण असंतुलन उत्पन्न हो गया है, तब वैदिक दृष्टिकोण और भी प्रासंगिक हो गया है। पृथ्वी, जल, वन, पर्वत, पशु-पक्षी सभी के संरक्षण हेतु वैदिक मंत्रों, यज्ञों व अनुष्ठानों द्वारा संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया गया था। मनुष्य की अतिलालसा, उपभोगवादी प्रवृत्ति और प्रकृति के प्रति स्वामित्व के भाव ने विनाश को आमंत्रित किया है। अतः आवश्यकता है कि भारतीय पारंपरिक ज्ञान से प्रेरणा लेकर प्रकृति के साथ संवेदनशीलता, समभाव और सह-अस्तित्व की भावना विकसित की जाए। जब तक मानव स्वयं को प्रकृति का अभिन्न घटक नहीं मानेगा, पर्यावरण संकट से मुक्ति संभव नहीं। वैदिक संस्कृति की यह चेतना ही टिकाऊ विकास का आधार बन सकती है।

अथर्ववेद में कहा गया—यस्य भूमिः प्रमाअन्तरिक्षमुतोदरम। दिवं यश्चके मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।। "भूमि जिसकी पादस्थानीय और अंतरिक्ष उदर के समान है तथा द्युलोक

जिसका मस्तक है, उस सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार है।" इस प्रकार वैदिक साहित्य पर्यावरणीय तत्वों में देवत्व स्वीकार करता है। चेतन और अचेतन का परम तत्त्व से तादात्म्य सिद्ध करके वैदिक साहित्य मानव की चतुर्दिक संसार से विरोध की भावना ही समाप्त कर देता है। उपनिषदों में लिखा है—"हे अश्वरूप धारी परमात्मा! बालू तुम्हारे उदरस्थ अर्ध जीर्ण भोजन है, नदियाँ तुम्हारी नाड़ियाँ हैं, पर्वत पहाड़ तुम्हारे हृदय खंड हैं, समस्त वनस्पतियाँ वृक्ष एवं औषधियाँ तुम्हारे रोम सदृश्य हैं।ये सभी हमारे लिए शिव बने। "माता भूमिः पुत्रोहम पृथिव्याः" के इस मंत्र में धरती माता से भावनात्मक संवेदना का रहस्य समाया हुआ है। ऋग्वेद में धावा पृथिवी सूक्त में आकाश को पिता व धरती को माता मानकर उसे अन्न और यश देने की कामना की गई है।ऋषियों ने प्रकृति के तत्वों के साथ मानव का सम्बन्ध माता-पिता व पुत्र के समकक्ष माना तथा मानवरूपी पुत्र को अपने पलकों व जीवनदाता तत्वों के प्रति गहरी कृतज्ञता रखने की प्रेरणा दी।

ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रकृति का अतिक्रमण देवों के लिये भी निषिद्ध है—"अतिक्रम्य न गच्छन्ति मरुतः। मरुतो नाह रिष्यथ" ऐसे में भला मानव को कैसे प्रकृति के क्षति पहुँचाने का अधिकार मिल सकता है। शास्त्र कहते हैं कि सम्पूर्ण जैवमण्डल का नियमन एवं सम्मान ही इसका संरक्षण व सुरक्षा है। वहीं यजुर्वेद कहता है—"अन्तरिक्ष मां हिंसीः।" अथर्ववेद (12.1.8) के अनुसार जिस प्रकार हृदय की गति पर प्राणी का जीवन निर्भर है, उसी प्रकार अंतरिक्ष की सुरक्षा में ही पृथ्वी और पर्यावरण की सुरक्षा है। वेदों में समस्त पर्यावरण की रक्षक एक महान मोटी परत का उल्लेख भी मिलता है जिसने समस्त संसार को सुरक्षित कर रखा है, जिसका रंग सुनहरा है—"महत् तदुल्बं स्थविरं तदासीद् येनाविष्ठितः प्राविवोशिथापः।" (ऋ. 10.51.1, अ.वे. 4.2.8) संभवतः यह ओजोन परत का संकेत है। वेदों में प्रमुख रूप से उल्लेखित श्लोकों में तीनों लोकों—पृथ्वी लोक, अंतरिक्ष लोक व द्युलोक की रक्षा हेतु परत प्रदान किया है।

प्रकृति के अन्य प्रमुख तत्वों यथा वायु, जल, अग्नि, औषधि, वृक्ष, वन, जीव जंतु आदि के संरक्षण व संवर्धन पर भी ऋषियों की दृष्टि रही। सबके संरक्षण व संबंधन से ही मानव दीर्घायु, सुस्वास्थ्य जीवनशैली, कृषि, कीर्ति, धन एवं विज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसी कामना को अथर्ववेद का ऋषि " आयुः प्राणं प्रजां पशुं" व "शत जीव शरदो" (3.11.4) करता है और ऋग्वेद में भी "शतां जीवंतु शरदः" (10.18.4) तथा यजुर्वेद में "शतिमिन्नु शरदों अंति" (25.22) करता है तथा मानव को आशीर्वाद देता है कि वह सौ वर्षों तक जीवित रहे। इंद्र (विद्युत), अग्नि, सविता (सूर्य), बृहस्पति (संकल्प शक्ति) और हवन (यज्ञ) तुझे सौ वर्षों तक आयुष्य प्रदान करें। मात्र सौ वर्ष जीने की कामना ही नहीं वरन् आरोग्यता और बल के साथ जीने की कामना भी है। वेदों में उपयुक्त शाश्वत भावना के अनुरूप ही पर्यावरण शुद्धि एवं सुस्वास्थ्य मानव की एक बड़ी आवश्यकता है।

मानव का व्यक्तिगत कल्याण ही नहीं अपितु सार्वभौमिक कल्याण की भावना भी वेदों में दृष्टिगत होती है। अथर्ववेद कहता है—"पृथ्वी शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति धौः शान्तिरापः शान्तिरौषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः, सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिर्भिः। ताभिः शान्तिभिः सर्वे शान्तिभि शमयामोहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः।।"

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना सुख शांति का आधार है। प्राकृतिक घटकों में शांति रहे, इस प्रकार की भावना वैदिक साहित्य में पर्याप्त रूप से उपलब्ध होती है जैसे पृथ्वी हमारे लिये कंटकविहीन और उत्तम बसने योग्य हो, हमारे दर्शन के लिये अंतरिक्ष शांतिप्रद हो—शं नो धावापृथिवी पूर्वहूतो शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शं न औषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजस्पतिरस्तु जिष्णु।। (ऋ. 7.35.5) वह आकाश जिसमें बहुत से पदार्थ रखे जाते हैं, हमारे लिये सुखकारक हो। सूर्य अपने विस्तीर्ण तेज के साथ हमारे लिये सुख देने वाला हो। सूर्य हमारे लिये सुखकारी तपे। चन्द्रमा हम लोगों के लिये सुखकारी हो। नदी,समुद्र और जल हमारे लिये सुखद हो। पीने का जल और वर्षा जल हमारे लिये कल्याणकारी हो—"शं नो देवीरभिष्टयः शं नो भवन्तु पीतये।" जलाशय अमृत बरसाने वाली हों। ज्योतिमय अग्नि हम लोगों के लिये सुखदायक हो।पर्यावरणीय तत्वों में आपसी समन्वय, साहचर्य की प्रार्थना के साथ-साथ सभी पर्यावरणीय घटकों के शुद्ध, स्वच्छ व उपकारी होने व रहने की प्रार्थनाएँ वैदिक साहित्य में प्राप्त होती हैं।

वायु की शुद्धता जीवन हेतु महत्वपूर्ण है जिसे यजुर्वेद में स्पष्ट किया गया है—तनूनपादसुरो विश्वदेवा देवो देवेषु देवः।

प्रो अनक्तु मध्वा घृतेन।। (यजु. 27.12) ऋग्वेद में भी शुद्ध तथा अशुद्ध वायु का उल्लेख करते हुए बल प्रदाता शुद्ध वायु की कामना की गई—द्वाविमौ वातो आ सिन्धोरा परावतः। दक्षिण ते अन्य आ वायु यद्रपः।। (ऋ.10.137.2) ऑक्सीजन रूपी प्राणवायु अमरत्व की धरोहर है जो जीवन हेतु अत्यन्त आवश्यक है। शुद्ध वायु तपेदिक जैसे रोगों हेतु औषधि है तथा आयु बढ़ाने वाली, आनन्ददायक है—"आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।।" और रात्रि हमारे लिये सुखकारी हो। मेघ हम प्रजाजनों के लिये शांतिपूर्ण हो। बिजली और गर्जन के साथ शब्द करते हुए पर्जन्य (मेघ) देव की वर्षा कल्याणकारी हों।

वायु के साथ जल के महत्व को भी स्वीकार करते हुए ऋषियों ने निवास के पास ही शुद्ध जल से भरे जलाशय को कामना की। शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घायु प्रदान करने वाला, प्राणों का रक्षक तथा कल्याणकारी माना गया "शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तुपीतये। शं योरभि स्त्रवन्तु नः।।" (ऋ. 10.9.4) वैदिक संहिताओं में जल को रोग निवारक एवं पाप संशोधक कह कर जल के पर्यावरणीय महत्व का प्रतिपादन किया गया है। इसी प्रकार पर्जन्य (बादल) को पर्यावरणीय जल विज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण माना गया। ऋग्वेद में कहा गया है कि गर्जन करता हुआ मेघ राक्षस, रोग व प्रदूषण को नष्ट करता है। गरजते मेघ के साथ बिजली (विद्युत) भी गिरती है जो भूमि की उर्वरता को बढ़ाती है। कृषि कर्म हेतु जल अनिवार्य है। तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।। (ऋ. 10.9.3)

पर्यावरण में अग्नि भी महत्वपूर्ण है। शतपथ ब्राह्मण अग्नि को देवताओं का मुख कहता है—"अग्निर्हि देवतानां मुखम्।" ऋग्वेद में कहा गया है कि अग्नि यज्ञवेदी एवं शरीर के रोगाणुओं को मारती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार "अग्निर्हि रक्ष्सामपहन्ता।" अग्नि को वर्षाकारक माना गया है। प्रदूषण निवारण तथा पर्यावरण पोषण हेतु यज्ञ अग्नि में ही पूर्ण होती है। अग्निसूक्त में आता है, जिस प्रकार पिता, पुत्र के कल्याणकारी कार्य में सहायक होता है, उसी प्रकार अग्नि हमारे कल्याण में सहायक हो—"स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।सचस्वा नः स्वस्तये।।" इसी प्रकार सूर्य की किरणें भी गंदगी को नष्ट करके पवित्र करने वाली है, रोगनाशक हैं।

पृथ्वी अर्थात भूमि भी पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक है—"विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।" भूमि नाना प्रकार के फल, अनाज, औषधियां, वृक्ष, वनस्पतियों की प्रसूता है तथा अत्यंत मूल्यवान संसाधन है। ऋग्वेद में भूमि संरक्षण के संबंध में विवेचन प्राप्त होता है। राजा को आदेशित किया है कि वह धन, औषधि, जल आदि को धारण करने वाली पृथ्वी की सुरक्षा करें। यजुर्वेद में संदेश है की भूमि को हम अपने दुष्कर्मों से ना बिगाड़े उसको प्रदूषित करना उसके प्रति हिंसा है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि भूमि को हम जननी के रूप में देखें, उसके प्रति हिंसा न करें। भूमि की हिंसा हम और हमारी हिंसा भूमि न करे। सत्य है यदि हम पृथ्वी से छेड़छाड़ करते हैं तो भूमि में भूकंप, मृदा क्षरण जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं, सबका पालन करने वाली भूमि की उपजाऊ शक्ति नष्ट मत होने दो। हे भूमि, हम तेरी खुदाई करें वह शीघ्र भर जायें। भूमि सूक्त का ऋषि कहता है कि निवास योग्य तथा विभिन्न कार्यों में प्रयुक्त होने वाली भूमि का संरक्षण करने से वह सुखद होती है। वेदों में गोबर खाद प्रयुक्त खेती की प्रेरणा दी गई है। राजा को आदेश है कि प्रदूषण रहित खेती को बढ़ावा दिया जाये। भूमि प्रदूषण निवारण हेतु यज्ञ भी महत्वपूर्ण है। पृथ्वी को यज्ञ भस्म द्वारा उत्तमोतम औषधीय का क्षारतत्व प्रदान करने का उल्लेख यजुर्वेद (6.21) में प्राप्त होता है। भूमि तत्व के संरक्षण से जुड़े हैं वन, वृक्ष, वनस्पति औषधि आदि। यही कारण है कि हमारे वैदिक मनीषियों ने वृक्षों एवं वन की रक्षा करने वालों को विशेष महत्व देने तथा उन्हें सतत अन्न धन देने रहने का संदेश दिया है। ऋग्वेद का समूचा आरण्यानी सूक्त वनों को समर्पित है। यह सूक्त पर्यावरण रक्षा और वनस्पति संबंधी चेतना को ही नहीं, मानव कल्याण के लिए उनके उपयोग और नियोजन की व्यापक जानकारी का अभूतपूर्व दृष्टांत है।

अथर्ववेद का ऋषि वन के सुखदायी होने की कामना करता है। वन के साथ ही वैदिक युग में वनस्पतियों का भी अत्यधिक महत्व था। दैनिक आवश्यकताओं, यज्ञों, योगक्षेम तथा विकारों के निवारण हेतु ये महत्वपूर्ण थीं। ऋग्वेद के औषधि सूक्त, अथर्ववेदिक ऋचाएँ तथा यजुर्वेद के मंत्रदृष्टा ऋषि वनस्पतियों की स्तुति करते नहीं थकते हैं। वराह, नेवला, सांप, सुपर्ण, रघट,हंस, मृग, गौ, भेड़, बकरी आदि सभी पशु-पक्षियों की औषधि जानकारी का लाभ हमारे विद्वान ऋषियों ने प्राप्त किया।

ऋग्वेद में अत्रि ऋषि ने वन और वर्षा के परस्पर संबंध को बताते हुए कहा कि वनों से जल फैलाया जाता है। सूर्य की किरणें अंतरिक्ष में जल का संचय करके अवर्षण के समय में ही वर्षा को वनों के ऊपर गिरने की प्रेरणा करती हैं। इसलिए वनों में कहीं अवर्षण नहीं होता। स्पष्ट है वृक्ष वर्षा कारक होते हैं। औषधियाँ पृथ्वी की आच्छादक होने से वस्त्र के समान हैं (ऐ. ब्रा. 5.28)। औषधियों को ऋषियों ने प्रदूषण नाशक भी माना है। यजुर्वेद (12.84, 91, 101) कहता है जहाँ भी प्रदूषण होता है, औषधियाँ उसे बाहर निकाल देती हैं। राजा को प्राकृतिक संसाधनों के विनाश न करने का आदेश दिया गया है और उसे कहा गया है कि प्रत्येक स्थान में जल और औषधियों, अन्नपान पदार्थों तथा वनज पदार्थों के विनाश को रोकने की व्यवस्था करे। शतपथ (1.3.3.10) के अनुसार, पृथ्वी के जिस भाग में अधिक पौधे होते हैं वह स्थान प्राणियों के लिए अतिशय जीवनोपयोगी होता है ।

वृक्षों को मानव के समान ही चेतन माना गया व वृक्ष व मनुष्य के जीवन की समानता दर्शायी गई। मत्स्य पुराण में वृक्ष के महत्व बताते हुए कहा गया—दश कूप समा वापी, दश वापी समो ह्रदः। दश ह्रद समः पुत्रो, दश पुत्रो समो द्रुमः।। अपने कल्याण की इच्छा रखने पुरुष को चाहिए कि वह तालाब के किनारे अच्छे-अच्छे वृक्ष लगवाए और उनका पुत्रों की भांति पालन करें ,क्योंकि वे वृक्ष धर्म की दृष्टि से पुत्र ही माने गए हैं। वृक्षों द्वारा जीवनदायी वायु, दैनिक आवश्यकता हेतु ईंधन, छाया, फल, फूल आदि अनेकों मनुष्य हेतु उपयोगी कार्य किए जाते हैं जिसके कारण वृक्षों को पुत्र सम कहना सर्वदा उचित ही है। वैदिक ऋषियों ने वृक्षों के महत्व को समझते हुए उनमें देवत्व प्रतिष्ठा कर अपनी वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया तथा उन्हें देवों के साथ जोड़ कर वनस्पतियों को सुरक्षा प्रदान करने की चेष्टा की। वर्तमान में भी भारतीय समाज विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों की पूजा करती है जिनमें पीपल, तुलसी,नीम, आँवला, पलाश, वट, शमी, खेजड़ी, आम, केला आदि प्रमुख हैं।

जैव विविधता पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक है तथा पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखने और पर्यावरण को जीवंत रखने हेतु आवश्यक है। वन्य जीवों के संरक्षण अभियान की महत्ता को हम इसी बात से लगा सकते हैं कि वर्ष 2016 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण दिवस पर "Go wild for life" को अपना ध्येय वाक्य कहा, अर्थात "वन्य जीव सुरक्षित तो मानव अस्तित्व भी सुरक्षित।" इनके महत्व का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी है, ये प्रदूषण निवारक भी है। पशुओं का पर्यावरणीय महत्व इसी बात से प्रमाणित हो जाता है कि इनकी उपस्थिति मात्र से वायु और भूमि आदि में विद्यमान दोष स्वतः दूर हो जाते हैं। उनकी गंध और अग्नितेज से रोगाणु तथा विष (प्रदूषण) तो नष्ट होते ही हैं,पशुओं द्वारा प्रदत्त दूध, घी एवं मल-मूत्र भी रोग व विषनाशक है। सर्वाधिक उपयोगी पशु गाय को माना गया है। उसे यज्ञपूरक तथा दुग्ध आदि से बढ़ाने वाली कहा गया। गो घृत से तैयार यज्ञाहुति से ऑक्सीजन गैस, जो कि प्राणवायु है, प्राप्त होती है। बकरी, भेड़ तथा गौ दुग्ध रोग निवारण हेतु प्रयुक्त होता है। घोड़े के हिनहिनाने से ज्वर और खांसी का निवारण होता है। मृग के मस्तक के भीतर की औषधि भी रोग निवारक है।

सभी पशुओं की रक्षा हेतु ऋषियों ने निर्देश दिये तथा उपयोगी पशुओं की हत्या करने वालों को कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया। हिंसक जीवों का वध भी विवशता में ही किया जाना चाहिए अन्यथा वन्य जीवों को पुनः वन क्षेत्र में ही पहुँचाने हेतु कहा गया है। सत्य है, एक भी प्रजाति के विलुप्त होने पर जैव विविधता पर संकट आता है और प्रकृति के बनाए पारिस्थितिकी संतुलन पर विपरीत परिणाम होता है। भारतीय संस्कृति में जीव जन्तुओं को मानव जीवन हेतु अत्यन्त उपयोगी व महत्वपूर्ण मानते हुए इनका आखेट वर्जित किया गया है। मुंडकोपनिषद में आता है दृतस्मात् देवा बहुधा सम्प्रसूताः। सांध्या मनुष्याः पशवोवयांसि।। (मु. उप. 2.17)

अथर्ववेद में भूलोक एवं दिव्य लोक के वन्य पशु, मृग तथा पक्षियों की हिंसा से विरत रहने की भावना की अपेक्षा की गई है। पार्थिवाः दिव्याः पशवःआरण्यान् उत ये मृगाः। शकुन्तान पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुंचत्वहंसः।। कृ (अ. वे. 11.5) शतपथ ब्राह्मण भी कहता है कृ अध्वरो वे यज्ञः। हिंसा रहित यज्ञ ही श्रेष्ठ यज्ञ है। जैव विविधता को बनाए रखने हेतु यह आवश्यक भी है कि जीव हिंसा से विरत रहा जाए।यज्ञ से आणविक विकिरण का प्रभाव बहुत कम हो जाता है। गौ घृत की आहुतियां अग्नि में देने से वायु मण्डल का 8000 घन फुट वायु का 77.5 प्रतिशत भाग शुद्ध और शुद्धिकर वायु से युक्त हो जाता है तथा 96 प्रतिशत कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। वेद मंत्रों की ध्वनि शक्ति भी पर्यावरण को शुद्ध व पवित्र

करने वाली है। ऋग्वेद (3.30.16) में ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण हेतु भी अग्नि में सुगन्धित पदार्थों की आहुति देने को कहा गया है। मौन रहना भी, इस प्रदूषण से बचने का श्रेष्ठ उपाय कहा गया है। यज्ञ में विभिन्न हविष्य के प्रयोग से उत्पन्न औषधीय वायु, दूषित वायु को गुणवान व तथा मेघस्थ जलों को मेघ्य जल में परिवर्तित कर देती हैं, जिससे समुद्र दिव्य वातावरण में उत्पन्न अधिक और गुणवत्ता से युक्त होती है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापना के समय कराये गये अगिनहोत्र यज्ञों से वहाँ के क्षेत्र में ठूँठ खड़े वृक्षों में कोपलें फूट गई थीं। स्पष्ट है, यज्ञ पर्यावरण का शुद्धिकरण व संरक्षण ही नहीं उसका संबंध समस्त प्राणियों को शक्ति तथा प्राकृतिक तत्वों के पोषण व उन्नयन करने में सक्षम है। ईश्वर सृजित और ईश्वर वासित सारी सृष्टि में मानव की विशेष भूमिका 'यजमान' अर्थात् यज्ञकर्ता के रूप में सुनिश्चित की गई है, जिसका आशय है कि मानव सृष्टि के विविध तत्वों का भोक्ता नहीं,यजमान बनकर सृष्टि यज्ञ के समुचित सम्पादन को ही अपना प्रधान कर्तव्य माने जिससे फलस्वरूप उसकी अभीष्ट सिद्धि भी होती रहे। ये कर्मकाण्डीय यज्ञ सृष्टिक्रम को सम्बद्धित करने का माध्यम व उपकरण है।

सृष्टि के पारिस्थितिकी तंत्र में मनुष्य का वही स्थान है जो पर्यावरण के अन्य घटकों का है। विवेकशील होने के कारण मानव का दायित्व है कि वह पर्यावरण के सभी घटकों के संतुलन को बनाए रखे तथा उनका संवर्धन करे। विडम्बना है विवेकशील मानव ही अनुचित आचरण कर अन्य घटकों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने मनोनुकूल बनाने व उपभोग करने में व्यस्त है। मानव की इस स्वार्थपरक व्यक्तिवादी प्रवृत्ति पर नियंत्रण होना पर्यावरण संरक्षण के लिए अत्यावश्यक है। "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्" मनुष्य का स्वयं पर इस प्रकार का संयम ही पारिस्थितिकी संतुलन बना सकता है। वैदिक साहित्य में ऐसे अनेक मंत्र हैं जो मानव को पापवृत्त मन से दूर सत्य आचरण करने का बोध देते हैं। प्रकृति में एक का उच्छिष्ट दूसरे के लिए उपभोग्य बन जाता है। इस व्यवस्था में यदि कोई व्यवधान उत्पन्न होता है, तो पारिस्थितिकी की प्रतिकूल स्थितियों दृष्टिगत होने लगती हैं। प्रकृति में उत्पन्न होने वाले मूल वस्तुस्थिति में उत्पन्न विकार ही प्रदूषण हैं, जिसे वैदिक साहित्य में पाप माना गया है। ऋग्वेद में देवगणों से प्रदूषण जैसे दोषों से हमारे शरीर को रक्षा करने की कामना है। अथर्ववेद (8.2.19) में प्रदूषण से मुक्ति की कामना की गई है। ऋषियों का मानना है कि पर्यावरण के व्यक्त पदार्थों को जब मनुष्य अत्यधिक शोषण से दूषित करता है, तब यह प्रकृति उसके मस्तक को झुका देती है। ऐसे मनुष्य हेतु यह प्रकृति सुखद व सुरक्षित नहीं होती। महाभारत व वायु पुराण कहते हैं, प्रदूषण के कारण अत्यधिक ताप बढ़ता है जिससे सूर्यादि ग्रह क्रूर हो जाते हैं और सूर्य किरणें जलाशयों, जंगल,नदी, पर्वत, वनस्पति आदि तीनों लोकों को जलाने लगती हैं। मत्स्य पुराण में भी कहा गया है कि प्रचंड सूर्य अपनी किरणों से समुद्र को शोषित कर सम्पूर्ण नदी, कूप, एवं पर्वतीय झरनों के अन्तर्गत के जल को सुखा देता है और अंत में वह अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी का भेदन करता हुआ, पाताल के जल को भी खींच लेता है। इससे भूगर्भीय जल के स्तर निरन्तर नीचे गिरने लगता है और जल संकट उत्पन्न होता है। वन आदि जलने लगते हैं। भयानक आंधियां चलने लगती हैं व कुपित वायु के प्रयोग से विनाशकारी मेघ, सूर्य,अग्नि व झंझावतों की उत्पत्ति होती है। इससे समस्त स्थावर जंगम प्रणियों के नष्ट होने का संकट उत्पन्न होता है। अतएव अत्यन्त आवश्यक है कि पर्यावरण रक्षा हेतु सचेत रहा जाये, जो मानव में सद्गुणों की उत्पत्ति से ही सम्भव है।

निष्कर्ष

वर्तमान में भौतिकवाद की अंधी दौड़ में विवेकहीन मानव ने परिग्रह वृत्ति को प्रमुखता दी है। वह खाद्य पदार्थ और अन्य भौतिक संपत्तियों का अनावश्यक संग्रह कर लेने की लालसा रखता है। यही लालसा प्रकृति के अंधाधुंध वह असीमित दोहन को तथा सामाजिक विषमताओं को जन्म देती है। प्रकृति के संसाधन सीमित हैं, पर उनका जिस गति और जिस मात्रा से उपभोग हो रहा है उसी गति से वह अपना पुनर्सृजन व पुनर्भरण नहीं कर सकती है। पर मानव अपनी स्वार्थवृत्ति के कारण जल, वायु, आकाश आदि सभी पर्यावरणीय तत्वों के मूल, सुखद रूपों का विकास रोक तथा विद्रूप करने के कार्य में संलग्न हैं। आवश्यक है कि उसकी इस स्वार्थमय परिग्रह वृत्ति पर अंकुश लगाया जाए। त्यागपूर्वक भोग की विचारधारा ने ही भारतीय पर्यावरण चिंतन में आत्मिकता, दिव्यता प्रदान की है, जिसने वैदिक वाङ्मय को मात्र प्राचीनतम देव वाणी सौंदर्यमय काव्य रचना ना रहने देकर, पर्यावरण समस्या में मानव को उसके यथोचित स्थान का निर्देश करके उसे प्रकृति की क्षमता

की रक्षा करने व उसका संवर्धन करने के पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान की है। वर्तमान में हमारा भोगवादी संकीर्ण मानसिकता ने मानव व पर्यावरणीय संबंधों को विकृत कर दिया है। राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण व उन्नयन के अनगिनत प्रयत्न हो रहे हैं। किन्तु मानव जब तक स्वयं को परिवर्तित नहीं करेगा, अपनी स्वार्थमय भोगवादी प्रवृत्ति पर अंकुश नहीं रखेगा, तब तक सभी प्रयास विफल रहेंगे। सभी घटकों के साथ पर्यावरण संतुलन हेतु, सहयोग, सहअस्तित्व एवं सांस्कृतिक मूल्यों को पुनः स्थापित करना होगा।

वैश्विक पर्यावरण के संरक्षण व संवर्धन हेतु भारत भूमि का वैदिक वाङ्मय अत्यन्त उपयोगी व महत्वपूर्ण है। चूंकि ये भोगवाद के दुष्परिणामों से संत्रस्त आधुनिक मानव को प्रकृति व पर्यावरण के प्रति वांछित आचार-विचार की व्यावहारिक प्रेरणा प्रदान करने में समर्थ है। भौतिक उन्नति तथा नैतिक, मानसिक उत्थान के समायोजन से ही जन-कल्याण का आदर्श चरितार्थ हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ऋक सूक्त संग्रह, व्याख्याकार डॉ हरिदत्त शास्त्री, डॉ कृष्ण कुमार, साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1977
2. यजुर्वेद संहिता भाषा भाष्य (भाग 1), श्री पंडित जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मंडल, अजमेर, तृतीयावृत्ति, सं 2010 वि
3. यजुर्वेद संहिता भाषा भाष्य (भाग 2), श्री पंडित जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मंडल, अजमेर, तृतीयावृति सं 2010 वि
4. अथर्ववेद संहिता (भाग 1), पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य, शांतिकुंज, हरिद्वार, चतुर्थ आवृत्ति, 2002
5. अथर्ववेद संहिता (भाग 2), पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य, युगांतर चेतना प्रेस, शांतिकुंज, हरिद्वार, पंचम आवृत्ति, 2002
6. शतपथ ब्राह्मण संपादित वेबर, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1964
7. ईशादि नौ उपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर, 33वां पुनः मुद्रण, संवत 2071
8. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, दशम संस्करण 1978, पुनः मुद्रण 1987
9. कोली हरिनारायण, पर्यावरण एवं मानव संसाधन, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1996
10. दवे, डॉ. दया, वेदों में पर्यावरण, सुरभि पब्लिकेशंस, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2000
11. रस्तोगी, डॉ. वंदना, प्राचीन भारत में पर्यावरण चिंतन, पब्लिकेशंस स्कीम, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2000
12. रूस्तगी, उर्मिला (सं), वेद तथा पर्यावरण, जेपी पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996
13. शर्मा, डॉ. उर्मिला देवी, शतपथ ब्राह्मण एक सांस्कृतिक अध्ययन, मेहर चंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1982
14. शर्मा, डॉ. राकेश कुमार, पर्यावरण प्रशासन एवं मानव पारिस्थितिकी, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, दिल्ली संस्करण, 2010
15. सिंघवी, डॉ. नंदिता, वेदों में पर्यावरण चेतना, सोनाली पब्लिकेशन, जयपुर 6, प्रथम संस्करण, 2004